अंजलि

डा० रामकुमार वर्मा

साहित्य भवन लिमिटेड

सवा रुपया

हिन्दी-गौरव-ग्रंथमाला—१२ वाँ ग्रंथ

अंजलि

श्री रामकुमार वर्मा, एम्० ए०

'कुमार'

प्रकाशक—

साहित्य-भवन लिमिटेड,

प्रयाग।

मुद्रक—

जगतनारायणलाल

हिन्दी-साहित्य प्रेस,

प्रयाग।

सुमित्रा

के

पाणि-पल्लव

में

सूची

परिचय

परिचय

श्रीरामकुमार वर्मा का जन्म मध्यप्रदेश के सागर जिले में १५ सितम्बर सन् १६०५ में हुआ था। उस समय इनके पिता श्री लक्ष्मीप्रसाद सर्कारी नौकरी के एक उच्चपद पर अधिष्ठित थे। सर्कारी नौकरी में श्री लक्ष्मीप्रसाद को अनेक जिलों में घूमना पड़ा, इसलिए बालक कुमार की प्रारम्भिक शिक्षा भी मध्यप्रदेश के भिन्न-भिन्न स्थानों में हुई। विशेष कर रामटेक (नागपुर) के एक मराठी स्कूल में इन्होंने मराठी में अपनी शिक्षा के चार वर्ष व्यतीत किए। हिन्दी की शिक्षा तो इनकी माता श्रीमती राजरानी देवी ने इन्हें घर पर ही दी थी।

प्रारम्भ से ही कुमार जी में प्रतिभा के चिन्ह थे। प्रत्येक कक्षा में इनका नम्बर हमेशा पहला रहता था। इनकी इस प्रतिभा का विकास एन्ट्रेंस तक इतना अच्छा हुआ कि इनकी आगे की क्लास के विद्यार्थी इनके पास पढ़ने के लिए आया करते थे। साथ ही साथ खेल में भी ये हमेशा प्रथम रहते थे। नाटकों में ये हमेशा कृष्ण का पार्ट लिया करते थे इसलिए ये हमेशा स्कूल में ऐसे नाटकों के खेले जाने की जिद किया करते थे जिसमें कृष्ण का पार्ट रहता था। लोग इनका कहना मान लेते थे क्योंकि ये गाना भी खूब अच्छा गा लेते थे। सन् १६२२

में जब ये एन्ट्रेंस की कक्षा में पहुँचे ही थे कि असहयोग की आँधी ने इन्हें स्कूल से उड़ा कर राष्ट्र-पथ पर ला दिया और उस समय इन्होंने नरसिंहपुर में—जहाँ ये रहते थे—ऐसा राष्ट्रीय कार्य किया कि बड़े-बड़े कार्यकर्ता आश्चर्य में आ गए।

कुमार जी में काव्य रुचि उनके शैशव में ही दिख पड़ी थी। ये तुलसीकृत रामायण बड़े स्वर से पढ़ा करते थे। और कभी कभी तुलसी की चौपाइयों में अपनी इच्छानुसार परिवर्तन भी कर दिया करते थे। जब ये मिडिल क्लास में थे तब एक रोज इनके मास्टर ने इनकी पुस्तक पर ये पंक्तियाँ लिखी हुई पाईं।

"ईश्वर मुझको पास कराओ अब
और मिठाई खूब सी खाओ तब"

पूछने पर कुमार ने शरमा कर कहा कि मैंने ये दो लाइनें पास होने की गरज से बनाई हैं। यह बात अगस्त सन् १९१८ की है।

सन् १९२२ में जब असहयोग आन्दोलन में कुमार जी शहरों में गीत गाते थे तो उस समय इन्हें नये-नये गीतों की आवश्यकता पड़ती थी। उसी आवश्यकता ने कुमार को हिन्दी

के क्षेत्र में खींच लिया और उन्होंने साहित्य-सम्मेलन और विद्वत्-परिषद की परीक्षाएं पास कीं। उसी समय १७ वर्ष की अवस्था में कानपूर के श्री बेनीमाधव खन्ना का ४१ रुपये का पुरस्कार इन्हें 'देश सेवा' शीर्षक कविता पर मिला। तभी से इन्हें कविता लिखने में उत्साह मिला और इन्होंने कविता लिखना अपने जीवन का एक अंग मान लिया।

कुमार जी ने सन् १९२३ में अनेक परिस्थितियों के कारण पुनः स्कूल में प्रवेश किया और उसी वर्ष एन्ट्रेन्स की परीक्षा पास की। इसके बाद ये जबलपुर के राबर्टसन् कालेज में गए। वहाँ सन् १९२५ में एफ्० ए० की परीक्षा द्वितीय श्रेणी में पास की। इसके बाद ये प्रयाग चले आए। इन्होंने प्रयाग विश्व-विद्यालय से १९२७ में बी० ए० और १९२९ में एम० ए० की परीक्षा पास की। एम० ए० की परीक्षा में ये हिन्दी लेकर प्रथम श्रेणी में प्रथम उत्तीर्ण हुए। अभी तक प्रयाग विश्वविद्यालय में हिन्दी में किसी को प्रथम श्रेणी नहीं मिली थी। कुमार जी ही इस गौरव को प्राप्त करनेवाले प्रथम विद्यार्थी थे। यूनीवर्सिटी ने उनकी प्रतिभा का सम्मान करते हुए उन्हें यूनीवर्सिटी में हिन्दी का प्रोफेसर बना दिया।

कुमार जी आजकल प्रोफेसरी के पद पर सुशोभित होकर

हिन्दी की सेवा कर रहे हैं। उनकी कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। कविता में 'अभिशाप' और 'चित्तौड़ की चिता' मुख्य हैं। 'मधुवन' जिसमें आपकी अन्य उत्कृष्ट कविताएं संग्रहीत हैं शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली हैं। आलोचना में 'साहित्य समालोचना' और 'कबीर का रहस्यवाद' महत्वपूर्ण पुस्तक है।

कुमार की कविता प्रकृति के अंगों को छूती हुई ईश्वर की अनुभूति करना चाहती है। प्रकृति के उस रहस्यपूर्ण स्वरूप में कुमार को प्रेम और सौन्दर्य के सिवाय कुछ नहीं मिलता है। हाँ, उस प्रेम के स्वरूप में निराशा का अंश बहुत अधिक है कुमार जी के विचार में निराशा का स्वरूप होना परमावश्यक है। यदि निराशा न हो तो प्रेम का सौन्दर्य नहीं निखरता। प्रकृति के प्रत्येक अंग में कुमार का आत्म-प्रदर्शन है। यदि प्रकृति न हो तो कुमार की कविता प्राणशून्य हो जायगी। प्रकृति की मनोहर झाँकी में कुमार को उस शक्ति के दर्शन होते हैं जो केवल सौन्दर्य से ही निर्मित है। उस सौन्दर्य की सुकुमार भावना में कवि की सारी कविता डूबी हुई है।

—प्रकाशक

अंजलि

अपने विचार

हिन्दी में आधुनिक काव्य-धारा कविता के पुराने नियमों का उल्लंघन करती हुई नजर आ रही है। इसमें मात्राओं एवं वर्णों के नियम अथवा बन्धनों का विरोध है। भावों में भी परम्परागत् कविता के वर्णन विषय से भिन्नता है। यही कारण है कि ब्रजभाषा के कोमल शब्द-विन्यास में पगी हुई राधाकृष्णमयी कविता के उपासकों को वर्तमान कविता की यह उच्छृङ्खलता अरुचिकर मालूम होती है। कविता के क्षेत्र में यह परिवर्तन आधुनिक हिन्दी प्रेमियों के सामने एक प्रश्न है।

हिन्दी साहित्य का इतिहास देखने पर हमें यह मालूम हो जाता है कि उसमें समय समय पर परिवर्तन हुआ है। राजनीतिक, सामाजिक या दार्शनिक प्रभावों से उसके प्रवाह में अन्तर आया है। वह अन्तर भावों में हो अथवा भाषा में। सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी के साहित्य में भक्तिकाल की — राम और कृष्ण सम्प्रदाय की — धार्मिक धारा ने भक्ति तथा विशुद्ध शृंगार की सृष्टि की। अट्ठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में उसी धारा ने शान्ति और विश्राम के वातावरण में षड्ऋतु वर्णन, नख-शिख और नायिका भेद की सृष्टि की। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में देश-भक्ति का चित्रण हुआ और इस समय छायावाद अथवा अनन्त का। साहित्य में परिवर्तन सदैव ही

होता है चाहे वह भाव का हो अथवा भाषा का। अट्ठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में परिवर्तन हुआ था, बीसवीं शताब्दी में भाषा और भाव दोनों ही में। परिवर्तन तो जीवन का चिन्ह है। यदि कोई भाषा जीवित है तो उसमें परिवर्तन होना अनिवार्य है। इसलिए यदि इस समय कविता के छन्दों में परिवर्तन हुआ है तो हिन्दी के पुराने प्रेमियों को क्षुब्ध न होना चाहिए। उन्हें तो यह समझ कर प्रसन्न होना चाहिए कि हमारी हिन्दी में जीवन के चिह्न दृष्टिगोचर हो रहे हैं। इस समय हम वर्तमान हिन्दी कविता की विवेचना छन्द और भावों की दृष्टि से ही करेंगे। क्योंकि इन्हीं परिवर्तन हो जाने के कारण आधुनिक कविता का नाम छायावाद पड़ गया है।

कविता और छन्द से बड़ा निकट सम्बन्ध है। यदि कविता मानव जीवन की विवेचना का भावात्मक और कल्पनात्मक प्रदर्शन है और उसके उद्देश में एक संगीत का प्रादुर्भाव करना है तो छन्द की सार्थकता स्पष्ट ज्ञात हो जाती है। नियमित लय, मात्रा या वर्ण संख्या से संगीत का जितना प्रादुर्भाव हो सकता है उतना गद्य की अनियमित वर्ण-संख्या और मात्रा से नहीं। कविता संगीत द्वारा जितना हृदय स्पर्श करती है उतना साधारण वाक्यों से नहीं। उसका एक कारण है। मनुष्य में संगीत की उपासना स्वभावतः ही है। इसलिए यदि कविता को हम हृदय-स्पर्शी

बनाना चाहते हैं तो छन्द की लय से युक्त होकर भावों के प्रकाशन करने का अवसर दें। हमारे साहित्य के आचार्य तो संगीत की इतनी सूक्ष्म विवेचना कर चुके थे कि उन्होंने विशेष भावों के प्रकाशन के लिए विशेष छन्दों का निर्माण कर दिया था। शोक के लिए मालिनी, अद्भुत के लिए शालिनी, शृंगार के लिए बसन्त तिलका, वीर के लिए पंच चामर, भयानक के लिए स्रग्धरा, शान्त के लिए शिखरिणी आदि।

इस सिद्धान्त के प्रतिकूल एक दूसरा विचार है। वह यह कि कविता यदि हृदय की अनियंत्रित भाव-धारा है तो उसमें छन्द का बन्धन कैसा! कविता तो स्वयं अपने स्वतंत्र प्रवाह में बहती है, कवि के हृदय से निकल कर वह उन्मत्त होकर स्वाभाविक रूप से प्रवाहित होती है। उसमें छन्द के नियम के लिए स्थान ही कहाँ है? क्या नदी के प्रवाह के लिए पहले से ही किनारे बना दिए जाते हैं? वह तो आप से आप अपने प्रवाह में किनारे बनाते हुए चलती है, उसे किसी नियम की आवश्यकता नहीं है। उसी प्रकार कविता अपने भावोन्माद में स्वयं अपने लिए लक्षणों का निर्माण कर लेती है, अथवा उसके लिए लक्षणों की आवश्यकता ही नहीं है। वाल्ट व्हिट्मैन (Waltwhitman) का तो यह सिद्धान्त था कि कविता के लिए कोई भी भाषा, किसी प्रकार की भाषा उपयोग में लाई जा सकती है। उसमें छन्द की

आवश्यकता नहीं है । छन्द का अनुकरण तो परम्परा का अन्ध-विश्वास ही समझना चाहिए। यही कारण है कि उसने अपनी कविता में न तो भाषा पर ठीक ध्यान दिया है और न व्याकरण पर ही । उसकी कविता की पंक्तियाँ चीटियों की लम्बी रेखा के समान अनियमित रूप से चली जाती हैं । उसे इस बात का ध्यान ही नहीं है कि कविता की पंक्तियाँ गद्य की पंक्तियों से लम्बी ही हो रही हैं । उसकी कविता का एक उदाहरण देना अनुपयुक्त न होगा ।

*क्राउड्स अव् मेन् एन्ड विमेन् एटायर्ड इन् दि युज़अल कस्टयूम्स हाउ क्यूरियस यू आर टु मी

आन दि फ़ैरी बोट्स दि हन्ड्रेड्स एन्ड हन्ड्रेड्स दैट क्रास,

रिटर्निंग होम , आर मोर क्यूरियस टु मी दैन यू वुड सपोज़,

इसे कौन कविता कहेगा ? यह तो गद्य के वाक्यों का

---

* Crowds of men and women attired in the usual costumes,
how curiouse you are to me ?
On the ferry boats the hundreds and hundrebs that cross,
Returning home, are more curious to me than you would suppose,

साधारण समूह है। उसकी भाषा किसी दैनिक पत्र की सूचना, आवश्यक पत्रों का सार या विविध विषय की भाषा के समान ही है। जर्मन कवि गेटे ने कला और कविता का रूप सौन्दर्य से माना सौन्दर्य से जो मनुष्य द्वारा सपरिश्रम साधारण वस्तुओं में लाया जाता है और जिससे उसकी छटा स्वाभाविक छटा से भिन्न हो जाती है। विट्मैन ने कला या कविता की स्वाभाविकता ही को सौन्दर्य माना है। वे कहते हैं कि मनुष्य ने पहली बार स्वाभाविक रूप से कविता या कला का जो रूप प्रकट किया है, वही सच्ची कविता या कला है। उसमें परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। कला का अन्तिम उद्देश तो यही है कि वह वस्तुओं को उनके स्वाभाविक रूप में छोड़ दे। छन्दों के अनुसार कविता का कोई भी रूप कला के अन्तर्गत नहीं आ सकता। जो कविता एक बार स्वाभाविक रूप से मनुष्य के हृदय से निकल चुकी वही संसार में सदैव के लिए कला पूर्ण कविता है।

विट्मैन ने इस स्वाभाविकता का इतना दुरुपयोग किया है कि उसकी कविता में मनुष्यों, पर्वतों, नदियों आदि की लम्बी सूची तैयार हो गई है। ऐसा मालूम होता है मानों वह विट्मैन साहित्य के अध्ययन की भूगोल की नोट बुक हो। वे लिखते हैं :—

*वेट ऐट् लिवरपूल, ग्लासगो, डबलिन, मारसिलीज़, लिस्बन

---

*Wait at Liverpool, Glasgow, Dublin Marseilles,

नेपिल्स, हैमबर्ग, ब्रिमेन्, बारडीक्स, दि हेग, कोपिनहेगिन ।

विट्मैन को विश्वास था कि कविता को परम्परा पर नहीं चलना चाहिए, उसमें नूतनता की आवृति अवश्य होती रहनी चाहिए। जान बेली ने वाल्ट विट्मैन पर जो आलोचनात्मक पुस्तक लिखी है उसमें पृष्ठ ८३ पर वे लिखते हैं :

"उसने (विट्मैन ने) इसे अनुभव किया कि जो कविता के लक्षणों पर आश्रित रहती है वह प्राचीन अथवा मृत, शुष्क अधिकार जतलाने वाली और निर्बल हो जाती है। समय समय पर उसे नूतनता के भारी भोजन की आवश्यकता पड़ती है। यदि उसे गद्य के उत्तेजना-जनक स्नान का विद्युत आघात दे दिया जाय तो उसकी बीती हुई जवानी फिर लौट आती है।"

इससे निष्कर्ष यही निकलता है कि कविता कभी कभी गद्य के रूप में भी लिखी जानी चाहिए। विट्मैन ने तो प्रत्यक्ष यह करके ही दिखला दिया। इस प्रकार की कविता, जिसमें किसी विशेष नियम का पालन नहीं है, मुक्त वृत्त के नाम से ही पुकारी जा सकती है। जिस वृत्त में मात्राओं अथवा वर्णों का कोई बन्धन नहीं है, उसके लिए मुक्त वृत्त से अच्छा कोई नाम नहीं है।

इस स्थल पर मुक्त वृत की गम्भीर विवेचना करना अनुचित

Lisbon, Naples, Hamburg, Bremen, Bordeaux, the Hague, Copenhagen,

है। उसकी स्थूल विवेचना अवश्य हो सकती है। मुक्त वृत्त का परिचय, उसके गुण उसकी विशेषताएं मिस्टर ब्रिजेज़ ने सन १६२२ के नार्थ अमेरिकन रिव्यू के नवम्बर के अङ्क में स्पष्ट समझाई थीं। उनके कहने का तात्पर्य यही था :

किसी चरण में मात्राओं की संख्या या पदों में चरणों की संख्या कवि के हृदय को बन्धन में डाल देती है। जिसे वह एक क्षण भर के लिए भी सहन नहीं कर सकता। नियमित मात्राओं के संगीत के बदले कवि अपनी पंक्तियों में एक प्रकार के नाद की सृष्टि करता है। यह नाद (rhythm) गद्य के नाद से भिन्न रहता है। कवि की पंक्तियों का नाद गद्य के नाद से कहीं अधिक सूक्ष्म, सरल, आवर्तक (recurring) और उत्सुकता उत्पन्न करने वाला होता है। यदि उस नाद से उत्सुकता उत्पन्न नहीं होती तो कम से कम वह नाद आगे आने वाली भावना की प्रतिध्वनि अवश्य दे देता है। उस नाद में भावनाओं का आवर्तन होता है और उसी से उत्सुकता और कुतूहलता की सृष्टि होती है।

इस प्रकार मुक्त वृत्त का उद्देश यह हो जाता है कि वह आचार्यों की पुरानी रूढ़ियों से स्वतंत्र होकर, बनावट और कृत्रिम बन्धनों का बहिष्कार कर, पुराने भावों के दासत्व का नाश कर नाद के सहारे भावों में सौन्दर्य लाता हुआ, स्वतंत्र मार्ग का अन्वेषण कर रहा है।

यह मुक्त वृत्त बंग साहित्य ने भी अपनाया। अब हमारी हिन्दी उसी पथ पर चलने का परिश्रम कर रही है। यह ठीक नहीं कहा जा सकता कि मिस्टर ब्रिजेज़ के सिद्धांत के अनुसार नाद के सहारे विचारों का पूर्ण प्रदर्शन हिन्दी में हो सका अथवा नहीं, पर यह अवश्य है कि हमारी हिन्दी की एक धारा इस ओर प्रवाहित हो गई है। इस प्रकार की कविता करने वालों में श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' और श्री सुमित्रानन्दन पन्त मुख्य हैं, यहां इनकी इस प्रकार की कविता का परिचय देना आवश्यक होगा। श्री निराला ने 'जागृत में सुप्ति थी' शीर्षक एक कविता इस प्रकार लिखी है।

जड़े नयनों में स्वप्न
खोल बहुरंगी पंख विहग से
सो गया सुरा-स्वर
प्रिया के मौन अधरों में
छुई एक कम्पन सा निद्रित सरोवर में।
लाज से सुहाग का
मान से प्रगल्भ प्रिय-प्रणय-निवेदन का
मन्द हास मृदु वह
सजा जागरण जग
थक कर वह चेतना भी लाजमयी

अरुण किरणों में समा गई।
जाग्रत-प्रभात में क्या शान्ति थी
जागृति में सुप्ति थी
जागरण-क्लान्ति थी।

प्रियतमा के स्पन्द अधरों में, जिसमें एक निद्रित सरोवर की छवि थी, एक क्षुब्ध कम्पन की भाँति मदिरा का स्वर नेत्र में न जाने कितने सुनहले स्वप्नों का अस्तित्व रख कर विलीन हो गया। उस समय लज्जा और मान ने मानों सुहाग और प्रिय-प्रणय-निवेदन का सौन्दर्य और भी उत्तेजित कर दिया। उस अलौकिक आसव की स्फूर्ति ने लज्जा और मान को इतना विस्तृत रूप दे दिया कि चेतना भी लज्जा से भर गई। जीवन का सारा तत्व लज्जा से निर्मित हो गया अथवा जीवन ही लज्जा हो गया। इस लज्जा के अरुण प्रभात में चेतना विश्राम कर रही है, कष्ट है। सोने में शान्ति है, विश्राम में आनन्द है।

इस अलौकिक विश्वास में जीवन की शान्ति है और संसार की इस जागृति में जीवन के विश्राम करने का अवसर है। यही इस जीवन का तत्व है। यहाँ कवि ने भौतिक जीवन के बाह्य रूप में, जागृत प्रभात में, शान्ति के लिए कोई स्थान नहीं माना। उसने तो जागरण में क्लान्ति का अस्तित्व खोज निकाला है। जीवन तभी शान्त हो जाता है जब अलौकिक

मदिरा का स्वर आत्मा-प्रेयसी के मौन अधरों में शान्ति पाकर मौन हो जाता है। न जाने कितने स्वप्न के बहुरंगी पंखों पर आत्मा उड़ती है और पार्थिव सत्ता का अनुभव करती है।

भावों का प्रवाह सुन्दर है पर है वह मुक्त वृत्त में। पुराने वृत्तों का बहिष्कार तो स्वतंत्र रूप से किया गया है पर नाद की गति मुझे प्रथम छः पंक्तियों में अच्छी ज्ञात हुई, शेष पंक्तियों में नहीं।

प्रिया के मौन अधरों में

के बाद ही

एक क्षुब्ध कम्पन सानिद्रित सरोवर में —

की कल्पना की प्रतिध्वनि गूँज जाती है। ऐसा प्रवाह आगे चल कर नहीं रह गया है। शायद कवि की भावना लाज से सुहाग का, और मान से प्रगल्भ प्रिय-प्रणय . निवेदन का वर्णन करते ही टूट-सी जाती है। और वह नाद की गति को भूल जाती है। इस छन्द में कवि ने भावों का निर्वाह तो ठीक किया है पर नाद का नहीं। अभी हिन्दी में इस प्रकार की कविता में हस्त-लाघवता प्राप्त करने के लिए समय की आवश्यकता है।

यह तो चरणों की नियमित मात्राओं के बहिष्कार का उदाहरण है। अब मात्रिक छन्द में तुक के बहिष्कार का उदाहरण लीजिए। श्री सुमित्रानन्दन ने महापौराणिक जाति के किसी १६ मात्रा के छन्द में अपनी पुस्तक ग्रन्थि की रचना की है। पुस्तक

के छन्द में यद्यपि मात्राएं बराबर हैं। पर उनमें तुकान्त नहीं है। मात्रिक छन्दों में हमारे आचार्यों के मतानुसार तुकान्त होना चाहिए पर सुमित्रानन्दन ने इस विचार की अवहेलना की है। हमें तो इस बात का सन्तोष है कि कवि यद्यपि यहाँ तुकान्त का बहिष्कार कर देता है तथापि उसकी कविता में हमें मात्राओं का नियमित संगीत मिलता है। इस विचार से निराला की कविता से पंत की कविता कहीं अधिक नाद युक्त और नियमित है। पंत की कविता में भावों की सुकुमारता तो उत्कृष्ट कोटि की है :

आह, यह किसका अंधेरा भाग्य है
प्रलय-छाया सा, अनन्त विषाद सा
कौन मेरे कल्पना के विपिन में
पागलों-सा यह अभय है घूमता
हृदय, यह क्या दग्ध तेरा चित्र है
धूम ही है शेष अब जिसमें रहा
इस पवित्र दुकूल से तू दैव का
वदन ढँकने के लिए क्यों व्यग्र है।

इन पंक्तियों में हृदय की वेदना का कितना विषादात्मक चित्र है जो प्रलय की छाया के समान मेरे कल्पना के निर्जन बन में एकान्त पागलों की भाँति बिना किसी भय के अपने उन्माद में अकेला घूमता है। इन पंक्तियों के विषाद की धारा से हमें जितनी शान्ति मिलती है, उतनी जीवन के अन्य भावों से नहीं क्योंकि

जीवन की शान्ति सुख में नहीं है। जीवन की शान्ति है वेदना में।

इस प्रकार वर्तमान कवियों की कविता में स्वतंत्रता के पूरे लक्षण हैं। संभव है इससे हिन्दी के पुराने प्रेमी अप्रसन्न हों, किन्तु मेरे विचार से उन्हें अप्रसन्न न होना चाहिए। कविता में यह परिवर्तन तो हुआ ही करता है। यह परिवर्तन अभी चाहे रुचिकर न जान पड़े पर आगे चल कर इसका रूप और भी स्पष्ट हो जायगा। दूसरी ओर हिन्दी कवियों को इतनी स्वतंत्रता न लेनी चाहिये कि वे उच्छृङ्खल जान पड़ें। उन्हें अपनी नई विचार धारा का रूप परिष्कृत कर हिन्दी प्रेमियों के सामने रखना चाहिए। हिन्दी के आधुनिक आचार्यों को इस नई धारा का स्वागत करना चाहिए। यह बहुत सम्भव है कि इस मुक्त वृत्त के प्रवाह में कई नौसिख हिन्दी पंक्ति लेखकों ने कवि कहलाने के लिए जो कुछ मन में आया लिख दिया है। इस प्रवृत्ति का रोकना अनिवार्य है। मुक्त वृत्त के नाम पर न जाने कितने असफल कवियों ने भाषा भाव-हीन पंक्तियाँ लिख कर हिन्दी को कलुषित करना चाहा है पर यह उनका निन्दनीय प्रयास है। यही कारण है कि वे चार पांच पृष्ट का मुक्त वृत्त लिखने के बाद किसी पूरे चित्र को पाठकों के सम्मुख नहीं रख सकते। उच्छ्वास आंसू, और आह से संयुक्त पंक्तियों को पढ़ कर जब आप अपने हृदय की भावनाओं पर दृष्टि डालते हैं तो वहाँ कुछ भी नहीं दीख

पड़ता। इसीलिए एक अङ्गरेजी के विद्वान ने इस प्रकार की कविताओं को, उनकी हँसी उड़ाते हुए 'शून्यवाद' का नाम दिया था।

अब वर्तमान कविता के भाव या विषय पर ध्यान दीजिए। हिन्दी साहित्य के आलोचकों का कथन है कि वर्तमान कविता का नाम छायावादी कविता है। छायावाद का अर्थ रहस्यवाद के अन्तर्गत ही समझना चाहिए। रहस्यवाद की विवेचना अत्यन्त मनोरंजक होने पर भी दुःसाध्य है। सागर के समान इस विषय का विस्तार विश्व साहित्य भर में फैला हुआ है। न जाने कितने कवियों के हृदय से रहस्यवाद की भावना निर्झर के समान प्रवाहित हुई है, उन्होंने उसके अलौकिक आनन्द का अनुभव कर मौन धारण कर लिया है। इसी रहस्यवाद को हम एक परिभाषा का रूप देने का प्रयत्न करते हैं। रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्छल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है। ऐसी स्थिति में परमात्मा के बिना जीवात्मा की शक्तियों का विकास नहीं होता। इसी विचार के वशीभूत होकर कदाचित् शमसी तबरीज ने कहा था:—

दर खाना ए आबो गिल
बे तुस्त खराब ईं दिल
या खाना दर आ ए जां
या खाना बिपरदाजम्

अर्थात् इस पानी और मिट्टी के मकान में तेरे बिना यह हृदय खराब है। या तो मकान के अन्दर आ जा, ऐ मेरी जां, या मैं इस मकान को छोड़ देता हूँ।

कबीर ने भी इसी से मिलता-जुलता विचार प्रकट किया था:-

कहै कबीर हरि दरस दिखाओ
हमहिं बुलाओ कि तुम चलि आओ।

इस प्रेम का सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता। इसका फल यह होता है कि परमात्मा के सभी गुण आत्मा में प्रतिबिम्बित होने लगते हैं और आत्मा के गुण परमात्मा में। दूसरे शब्दों में यों कह लीजिए कि परमात्मा की छाया आत्मा में पड़ने लगती है और आत्मा की छाया परमात्मा में। यही छायावाद है। अनन्त पुरुष का आभास सान्त प्रकृति में होने लगता है। अपरिमित ईश्वर परिमित संसार में अपनी छाया फेंकता हुआ नजर आता है। पुरुष या ईश्वर की यही छाया जब कवि संसार के अंगों में वर्णन करता है तो उस वर्णन को छायावाद का नाम दिया जाता है। रहस्यवादी जरसन के अनुसार रहस्यवाद की अभिव्यक्ति उसी समय होती है जब आत्मा प्रेम की अमूल्य निधि लिए हुए परमात्मा में अपना विस्तार करती है। पवित्र और उमंग भरे प्रेम से परिचालित आत्मा का परमात्मा में गमन ही

रहस्यवाद कहलाता है। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ने केवल आत्मा को ही परमात्मा से मिलने के लिए उत्सुक नहीं बतलाया वरन् परमात्मा को भी आत्मा से मिलने के लिए उत्सुक बतलाया है वे 'आवर्तन' शीर्षक कविता में लिखते हैं।

धूप आपनारे मिलाइते चाहे गन्धे
गन्धो से चाहे धूपेरे रोहिते जूड़े
शूर आपनारे धोरा दिते चाहे छोन्दे
छोन्दो फिरिया छूटे जेते चाय शूरे
भाव पेते चाय रूपेर माझारे अंगो
रूपो पेते चाय भावेर माझारे छाड़ा
ओशीम से चाहे शीमार निबिड़ शंगो
शीमा चाय होते ओशीमेर माझे हारा
प्रोलये श्रजने ना जानि ए कारे जुक्ति
भाव होते रूपे ओविराम जायोआ आशा
बन्ध फिरिछे खूजिया आपोन मुक्ति
मुक्तिमांगिछे बांधोनेर माझे बाशा

इसका अर्थ यही है कि —

धूप, एक सुगन्धित द्रव्य, अपने कोसुगन्धि के साथ मिला देना चाहता है।
गन्ध भी अपने को धूप के साथ सम्बद्ध कर देना चाहती है।
स्वर अपने को छन्द में समर्पित कर देना चाहता है।

छन्द लौट कर स्वर के समीप दौड़ आना चाहता है।
भाव सौन्दर्य का अंग बनना चाहता है।
सौन्दर्य भी अपने को भाव की अन्तरात्मा में मुक्त करना चाहता है।
असीम ससीम का गाढ़ालिंगन करना चाहता है।
ससीम असीम में अपने को बिखरा देना चाहता है।
मैं नहीं जानता कि प्रलय और सृष्टि किसका रचना-वैचित्र्य है।
भाव और सौंदर्य में अविराम विनिमय होता है।
बद्ध अपनी मुक्ति खोजता फिरता है।
मुक्ति बन्धन में अपने आवास की भिक्षा माँगता है।

हिन्दी कविता में यही छायावाद बड़े जोर से प्रचार पा रहा है। कविता में आत्मा और परमात्मा की संयोगकांक्षा की अभिव्यक्ति हो अथवा न हो, यदि कवि या लेखक की रचना में 'अनन्त' शब्द एक बार ही आ गया तो उस पर समालोचक छायावाद की मुहर लगा देते हैं। मैंने तो यहाँ तक सुना है कि आजकल की कविता का दूसरा नाम छायावाद ही है। मैं यह नहीं समझ पाता कि पढ़े-लिखे लोग छायावाद का वास्तविक मर्म समझे बिना ही क्यों किसी पद्य को छायावादी कविता का नाम दे देते हैं। मेरे विचार में तो हिन्दी कविता में अभी सच्ची छायावादी कविता की सृष्टि ही नहीं हुई। मुझे ऐसी कविता आज तक देखने को नहीं मिली जिसमें छायावाद की

सच्ची अभिव्यक्ति हो। प्रसाद, निराला, पन्त आदि अपनी किसी कविता में अनन्त को खोजने का भले ही प्रयत्न करते हों पर उनका वह प्रयत्न या तो फलीभूत ही नहीं हुआ अथवा उन्होंने केवल अनन्त की विभूति का वर्णन कर अपने हृदय की भावनाओं से उसकी पूजा भर की है। मैंने वर्तमान कविता की अनेक पंक्तियो को पढ़ कर जहाँ तक धारणा निश्चित की है वह यही है कि वर्तमान कवियों को प्रकृति की गोद में खेलने ही में आनन्द आता है। उन्हे प्रकृति की अनेक विभूतियों का विराट् स्वरूप देखने को मिलता है और वे उन्ही में या तो खो जाते हैं या अपने को भूल जाते है। हृदय की कुतूहलता को शान्त करनेवाली, हृदय की भावनाओं को सुख देनेवाली अनेक वस्तुओं और उनके काल्पनिक स्वरूपों की सृष्टि प्रकृति के गंभीर विस्तार ही में होती है। ये आँसू कहाँ से आते हैं! इस लहर की लोल हिलोर का कैसा स्वर्गीय हुलास है! तारे क्या हैं, छाया कैसी है, लहरों में युवती की चंचल दृग-कोर क्यों है? फूलों के रंगों में कौन हँसता है? बिजली बार बार निकल कर किसे बुलाती है? ऐसे ही और अनेक विचारों पर प्रश्नवाचक विवेचनाएँ होती हैं। प्रकृति का क्षेत्र ही इन कवियों की कविता का क्षेत्र है। ऐसी स्थिति में इस कविता को यदि 'छायावाद' के बजाय

'प्रकृतिवाद' कहें तो अधिक युक्ति-संगत होगा। अनन्त के सम्मिलन की आकांक्षा और अन्तिम संयोग के पहले कवि को प्रकृति के गूढ़ रहस्यों का अन्वेषण करना पड़ता है। उसे पहले प्रकृति का मर्म जानना पड़ता है प्रकृति का ज्ञान आत्मा के ज्ञान के पहले होना चाहिये। अतएव 'प्रकृतिवाद' को हम 'छायावाद' की पहली सीढ़ी मान सकते हैं। बहुत सम्भव है कुछ ही वर्षों में छायावाद की सच्ची पंक्तियाँ हम लोगों की दृष्टि के सामने आने लगें। इस समय तो हमें केवल छायावाद की छाया मात्र मिलती है, उसका सच्चा स्वरूप नहीं। हमारे कवियों ने अभी केवल प्रकृति के रहस्य को समझने की चेष्टा की है, उसमें व्यापक आदि पुरुष की नहीं। ऐसी अवस्था में वर्तमान कविता को छायावाद के नाम से पुकारना कविता की पहिचान न कर सकने का लक्षण है। मैं हिन्दी समालोचकों से यह आशा करता हूँ कि वे हिन्दी कविता की भावनाओं में पैठ कर उसके रहस्यों की जाँच करें। बिना जाँच किये ही किसी पंक्ति को छायावाद का नाम देना। किसी कविता के वास्तविक भावों को उपेक्षा की दृष्टि से देखना है।

इन विचारों को दृष्टि में रख कर मेरे पाठक निर्णय कर लें कि मेरी कविता में रहस्यवाद और प्रकृतिवाद का प्रदर्शन कहाँ तक हुआ है।

रामकुमार वर्मा

प्रार्थना

फूलों की अधखुली आँख !
मार्ग देख मेरे प्रियतम का,
देख देख नीला आकाश ।
जब तक वे न यहाँ आवें,
खुलने का मत कर व्यर्थ प्रयास ॥

सागर की गतिवती तरंग ।
ले उसाँस मत, तट पर जाकर,
चुप हो जा ओ चंचल बाल !
मेरे प्रियतम के आने की,
ध्वनि से देना अपनी ताल ॥

ओसों के बिखरे वैभव !

फैले हो अवनी पर, शासन—
करने का यह अनुपम ढंग ;
तुम से भी तो कोमल है,
मेरे प्रियतम का उज्ज्वल अंग ॥
मत उड़ना ए, अश्रु-विन्दु बन
करना उन फूलों में वास ।
मेरा अनुपम धन आवे,
जब तक इस निर्धन मन के पास ॥

तरुवर के ओ पीले पात !

मत गिरना, मेरे प्रियतम को,
तो आ जाने दो इस बार ।
आने पर उनके चरणों पर,
गिर कर हो जाना बलिहार ॥

ओ समीर के मन्दोच्छ्वास !
फूलों की प्याली में तब तक,
मत भरना छवि सुधा अपार ।
जब तक प्रियतम की पद-ध्वनियाँ,
पहुँच न जावें मेरे द्वार ॥

जल-कुबेर ए काले मेघ !
प्रिय की विरह-ज्वाल दिखलाकर,
क्यों बरसाते हो जल-धार ।
वसुधा के वैभव ही से तो,
करते हो अपना विस्तार ॥
तब तक मौन रहो जब तक,
मेरे आँसू का पारावार ।
मिल जावें तुम से करने को,
प्रियतम के पद का शृंगार ॥

ओ मेरी तंत्री के नाद !

मत गुंजो, मेरी उँगली से
मत बोलो ओ प्राणाधार !
मेरे मन में बस जाने दो,
पहले मेरा प्रिय स्वरकार ॥

विभूति

मेरे सुख की किरन अमर
जीवन-बूँदों में से चल कर,
बिखरो इन्द्रधनुष बन कर।
मेरे सुख की किरन अमर
मेरे नव जीवन बादल में,
रंग सुनहला दोगी भर ?
बाला बन कर छू लोगी क्या,
मेरा यह पीड़ित अन्तर ?
जब मेरे क्षण होते होंगे,
अंधकार के अम्बर पर।
तब तुम प्रथम प्रकाश-ज्योति बन,
उन्हें जगाना चूम अधर।
मेरी आँखों के आँसू के,
बिन्दु बनें नीरव निर्झर।

तब तुम उस धारा पर गिरना,
प्रतिबिम्बित होकर सत्वर ।
मेरे जीवन-नभ के नीचे,
जब हो अंधकार सागर ।
तब तुम धीरे धीरे से आ,
फेनिल-सी सजना सुखकर ।
मेरे जीवन में जब आवें,
अंधकार के श्याम प्रहर ।
तब तुम खद्योतों में छिप कर,
आ जाना चुपचाप उतर ।
मेरे सुख की किरन अमर ।

ये गजरे तारों वाले

इस सोते संसार बीच,
जग कर सज कर रजनी वाले !
कहाँ बेचने ले जाती हो,
ये गजरे तारों वाले ?
मोल करेगा कौन,
सो रही हैं उत्सुक आँखें सारी ।
मत कुम्हलाने दो,
सूनेपन में अपनी निधियाँ न्यारी ॥
निर्झर के निर्मल जल में,
ये गजरे हिला हिला धोना ।
लहर हहर कर यदि चूमे तो,
किंचित विचलित मत होना ॥
होने दो प्रतिबिम्ब विचुम्बित,
लहरों ही में लहराना ।

लो मेरे तारों के गजरे,
निर्झर-स्वर में यह गाना ॥
यदि प्रभात तक कोई आकर,
तुम से हाय, न मोल करे।
तो फूलों पर ओस-रूप में,
बिखरा देना सब गजरे ॥

एकान्त गान

अरे निर्जन वन के निर्मल निर्झर,
इस एकान्त प्रान्त-प्रांगण में
किसे सुनाते सुमधुर स्वर ?
अरे निर्जन वन के निर्मल निर्झर
अपना ऊँचा स्थान त्याग कर,
क्यों करते हो अधःपतन ।
कौन तुम्हारा वह प्रेमी है,
जिसे खोजते हो वन वन ?
विरह-व्यथा में अश्रु बहा कर,
जल मय कर डाला सब तन ।
क्या धोने को चले स्वयं,
अविदित प्रेमी के पद-रज-कन ?
लघु पाषाणों के टुकड़े भी,
तुमको देते हैं ठोकर ।

क्षण भर ही अविचल होकर,
कम्पित होते हो गति खोकर ।
लघु लहरों के कम्पित कर से,
करते उत्सुक आलिंगन ।
कौन तुम्हें पथ बतलाता है,
मौन खड़े हैं सब तरुगन ?
अविचल चल, जल का छल छल,
गिर पर गिर गिर कर कल कल स्वर ।
पल पल में प्रेमी के मन में,
गूँजे ए कातर निर्झर !

ओ समीर, प्रातः समीर !

ओ समीर, प्रातः समीर !
मेरे पल्लव सोते हैं,
टूटे न शान्त स्वप्नों का तार ।
या तो धीरे-से आओ,
या रहो दूर, देखो उस पार ॥
सरल सुमन-शिशुओं ने तेरी,
आहट से दी आँखें खोल ।
यह सौन्दर्य-सुधा छलका कर,
घटा दिया क्यों उसका मोल ?
ओ समीर, निष्ठुर समीर !
कलियों को मत छुओ,
बालिकाएँ हैं, सरला हैं, अनजान ।
गाना मत उनके समीप,
उन्मत्त अरे, यौवन के गान ॥

असम तुम्हारा है प्रवाह,
ध्वनि-पद से करते व्योम-विहार।
या तो धीरे से आओ,
या रहो दूर देखो उस पार॥

ओ समीर, मादक समीर!

किसका शिशुपन चुरा चुरा कर,
भरते हो ओसों में आज?
किसकी लाली छीन कर रहे,
उषा-प्रेयसी का यह साज?
अरे, एक झोके में ही क्यों,
उड़ा दिए सब तारक-फूल।
मेरे स्वप्नों में क्यों भर दी,
मेरे जागृतपन की धूल

ओ समीर, पागल समीर!

अन्तिम संसार

तरुवर के ओ पीले पात,
किस आशा के तन्तु सम्हाले रहते हैं दिन रात ?
                    रात हो या कि प्रभात ॥
पतले एक हाथ से पकड़े हो तरुवर का गात ।
अन्य तुम्हारे स्वजन,
        हरे रंगों का ले परिधान ।
हँसते हैं पीलेपन पर क्या,
        मर मर मर कर गान ?
सुनते हो चुपचाप,
        अन्य पत्तों का यह अभिशाप ।
उनका है आनन्द तुम्हारा
            यह विषमय संताप ॥

गिर जाना भू पर,
　　　　समीर में हिल डुल कर इस बार ।
खिलता देना पत्तों को,
　　　　　　　　उनका अंतिम संसार ॥

जीवन स्रोत

ओ प्रवाहिनी रुक जा, ओ जीवन प्रवाहिनी रुक जा।

शान्त, क्या न है श्रान्त, प्रान्त एकान्त भयानक निर्जन
सुन पड़ता चीत्कार और क्रन्दन का कलुषित कम्पन
प्रतिध्वनि को ले वायु, झूमता ही रहता है वन वन
एक भयानक शब्द उसी का प्रतिध्वनि से परिवर्तन
यह विषाद का सिन्धु नहीं है तेरा उज्ज्वल जीवन
ओ सुहासिनी रुक जा, ओ जीवन प्रवाहिनी रुक जा।

नीरव चादर में कर्कश स्वर खिंचा छिद्र बन जर्जर
तरु का पीला पात, चिर वियोगी उफ कातर
गिरा, आह तेरे प्रवाह के चञ्चल परिवर्तन पर
मन्द स्वरों में हँसे हरे पल्लव पल पल मर मर कर
अरी झुला तो ले उस शव को लहर लहर पर पल भर
ओ अभागिनी रुक जा, ओ जीवन प्रवाहिनी रुक जा।

उस उदास संध्या का मेरे मन से पुनः निकलना
तेरी लहरों का वृक्षों की छवि मरोड़ कर चलना
तेरे दर्पण में मेरी पश्चिम-आशा का जलना
तेरे अंचल में तारक-शिशुओं का स-गति मचलना
यह सब देखा, एक बार अब तो ओ प्रिये सम्हल जा

ओ विहारिणी रुक जा, ओ जीवन प्रवाहिनी रुक जा।

जो तुझ में है स्वर्ण-रेख, वह बादल की है माया
तेरा यह बसन्त है केवल एक शिशिर की छाया
री एक लहर में यद्यपि अविदित नृत्य समाया
पर क्या वह स्थिर है, तूने क्या तत्व कभी यह पाया
सुन ले, तेरी लहरों ने संगीत यही तो गाया

ओ विनोदिनी रुक जा, ओ जीवन प्रवाहिनी रुक जा।

मेरी कविता की धारा तो तुझ से भी है चञ्चल
मेरी इच्छा तेरी लहरों से भी होगी उज्ज्वल

अपने इस अगाध जल में, जो रटता रहता कलकल
जरा मिला ले प्रेम भरे, मेरे आँसू का कुछ जल
यह अनन्त का प्रेम सदा ही सरिते ! होगा निर्मल
ओ तरंगिनी रुक जा, ओ जीवन प्रवाहिनी रुक जा ।

अनन्त स्मृति

कवि, मेरा सूखा-सा जीवन,
रहने दो तुम सूना
रहो दूर, मेरे सुख दुख की,
स्मृतियाँ तुम मत छूना
रंगों से मत भरो चित्र,
धुँधली रहने दो रेखा
मेरे सूखे-से थल में,
किसने गङ्गा जल देखा ?
गीत-विहँग क्यों उड़े, अभी है मौन-अँधेरा मेरा
हाय, न जाने कहाँ सो रहा स्मृत-संगीत-सवेरा
ओसों के अक्षर से अंकित
कर दूँ व्यथा-कहानी
उसमें होगा मेरी आँखों
के मोती का पानी

उसे न छूना, रह जावेगी
मेरी कथा अधूरी
कैसे पार करूँगी फिर मैं,
हृदय-अपरिचित दूरी ?
सुख की नहीं, किन्तु दुख ही की बनी रहूँगी रानी
मेरे मन ही में रहने दो, मेरी करुण कहानी
अंधकार का अम्बर पहने
रात बिता दूँ सारी
दीप नहीं, तारक-प्रकाश में,
खोजूँ स्मृति-निधि न्यारी
ओस सदृश अवनी पर बिखरा—
कर यह यौवन सारा
किसी किरण के हाथ समर्पित
कर दूँ जीवन प्यारा
तब तक यह सूखा-सा जीवन रहने दो तुम सूना
रहो दूर, मेरे सुख दुख की स्मृतियाँ तुम मत छूना

निराशा में आशा

गिर गई मेरी छोटी कुटी
आओगे अब कहाँ देव ! तुम
विश्व सम्पदा लुटी
गिर गई मेरी छोटी कुटी

पृथ्वी से प्रकाश चुन चुन कर
रजनी ने नभ कुंडों में भर
पुतली के मिस डाल दिया है
अंधकार मेरी आँखों पर
मेरे दुख के अन्धकार में
मेरी आशा लुटी
गिर गई मेरी छोटी कुटी

जान सकेगी चपला ही, अति
मेरे चञ्चल भावों की गति
ओसन्यून है, करती ईर्ष्या

मेरे अश्रु बिन्दुओं के प्रति
एक स्वप्न निधि थी असत्य,
वह भी हाथों से छुटी
गिर गई मेरी छोटी कुटी
मेरे मनस्ताप से जल जल
आँसू बाष्प बने प्रति पल पल
मेरे सुख को शीघ्र छिपा लें,
वे बन कर करुणा के बादल
कुटी धूल हो पर उसमें
'वह' चरण-धूल हो जुटी
सदा गिरती रहे मेरी कुटी

आँसू

न जाओ व्यथित वारि के बाल,
दुखी दृग-द्वारों में इस बार
पतन के उन्मादों में कहीं,
रखा है क्या जीवन का सार ?

वेदना की आँधी में हिला
न स्मृति का मुस्काया-सा फूल
सजाने उसको बन कर ओस
गिर रहे शिशु निज शिशुपन भूल

गिरोगे ? गिर जाओगे अरे,
मृत्यु का है अथाह जल-कूल
एक ही बूँद, एक ही बूँद
तुम्हारा है अस्तित्व अमूल

जब लगी है मन में यह आग
कहाँ से पाऊँ जल की धार
हाय, देखो तुम भी गिर चले
यदपि बूँदे ही हो दो चार
वेदनाओं का सारा कोप
एक जल-कण में करके बन्द
सौंप दो उस मन को ए विकल !
पतन में जिसको है आनन्द

जादू भरी हथेली

तप्त हृदय पर बरस पड़ीं जब
आँसू की दो धारें
छिपी रह गयी मन ही में,
मन की भीषण चीत्कारें
हृदय और भी क्यों जलता है
पाकर थोड़ा पानी ?
नया रूप रख कर आई है
मेरी व्यथा पुरानी
जब जीवन ही निष्ठुर प्रेमी-सा
नीरस है सूखा
फिर क्यों है यह हृदय
प्रेम के दो टुकटों का भूखा ?
इच्छाएँ हैं मूक किन्तु वे
हैं कितनी मतवाली

मधु की इच्छा है, पर मेरी
टूट गई है प्याली
मेरी आशे, सरल बालिके ! बहुत धूल में खेली
आ जा, ज़रा चूम लूँ तेरी जादू भरी हथेली

अश्रुमय फूल

कहा, 'सजनी क्यों प्रातःकाल
कुसुम का तुम करती हो चयन ?'
प्रात-सी बनी सौम्य सुकुमार,
कुसुम-से सजे सजीले नयन
लजीले नयन, कुसुम से नयन

कहा, 'क्यों सारी सूनी रात
गिना करती हो तारक इन्दु ?'
बनी रजनी-सी निद्रित श्याम
सजे मुख पर प्रस्वेद से बिन्दु
स्वेद के बिन्दु, सुतारक बिन्दु

कहा, 'यह सुख का विकसित मौन
कभी क्या बन सकता है गान ?'
उठी थी चिन्तित चितवन एक

उसी में थे कुछ स्वर अनजान
कौन था गान, दिव्य था गान
कहा, 'यह चञ्चल यौवन-नाव
लगेगी क्या सरिता के कूल ?'
अश्रु-सरि की सूखी-सी धार
बह गई जहाँ पड़ी थी धूल
यही है कूल, अनुपम कूल ?

ओस बिन्दु

अवनी तल के परम मनोहर
ए नव शोभाशाली इन्दु
नीरव, शून्य भावना वाली,
रजनी के आंसू के बिन्दु
लतिका-रमणी के कंठों के
भू पर बिखरे श्वेत प्रवाल
विकसित फूल तथा कलियों के
तरल स्वेद के सुखमय जाल

प्रकृति देवि के ललित लाड़ले
चन्द्र देव के सुत भावुक
अथवा उषा देवि दर्शन को
अवनी के लोचन उत्सुक

सुमन चयन के समय प्रकृति
के कर से पतित प्रसून अजान
रवि किरणों में उड़ने वाले
ए छोटे से विशद विमान!

देव नारियों के संचित मृदु
हास्यों के हे विविध स्वरूप
तृण के सिंहासन पर बैठे
हरित दूब के सुंदर भूप
शस्य तथा वृक्षों पर बैठे
छोटे छोटे मूक विहंग
अमृत स्वर्ग के! आए हो क्या,
रमने नश्वरता के संग

शशि ने रात्रि समय जो किरणें
बोईं, उनके नव अंकुर

बिछुड़े पति हो उषा-नारि के
        उससे मिलने को आतुर
सुषमा के छोटे से बुद्बुद
        प्रकृति-गणित के शून्य अमित
रवि के नीरव नव वन्दीजन
        पवन खिलौने नव निर्मित
प्रातः की छवि के उफान !
        ए, उड़ जाओ सौन्दर्य-निधान
कुछ क्षण ही जीवित रहना है
        इस जग को दे दो यह ज्ञान,

संगीत

गगन में गूँजो गर्वित गान
किस बाला के अधरों को छू
पा समीर की गोद
धीरे धीरे हिलते आए
और लुटाते मोद
किन श्वासों में जाग
कंठ को धीरे धीरे त्याग
लेकर अपने साथ ओंठ का
परिमल मधुमय राग
किया है किस मदिरा का पान ?
क्या यौवन की मदिरा पीकर
पा कर शक्ति अपार
मृग नयनी के नयनों में
चुपचाप बने साकार

अधर-द्वार को खोल
प्रतीक्षाकांक्षित पाकर वायु
गिरे जगत में मैली करने
अपनी कोमल आयु
अभी तो हो भोले नादान
मधुऋतु में कोकिल करती थी
बौरों का आह्वान
वहीं तुम्हारा जन्म हुआ था
वहीं हुआ अवसान
हिला हिला कर पल्लव को
छूवे प्रतिध्वनि में आह
एक वेदना छोड़ गये
ले चञ्चल वायु प्रवाह
तुम्हें इसका होगा क्या ज्ञान
बाल चन्द्र की शैशव किरणों
का था क्रीड़ा काल

यहां प्रसूनों ने गूँथी थी
बिखरी अलि की माल
और वहाँ बिखराया था अपना
सब सौरभ भार
कलियों ने अपने रंगों से
किया लिपट कर प्यार
याद है क्या तुम को वह स्थान ?
प्रकृति-जननि ने गूँथा था
हरियाली का मृदु जाल
कैदी बन कर खेल रहे थे
कुछ विहगों के बाल
उनके कंठों में सोये थे
जग कर तुम सुकुमार
शिशु समीर की हृद् धड़कन में
गूँजे थे उस बार
तुम्हें गाऊँ, आओ हे गान,

शिशिर

समय की शीतल साँस
यही तुम्हारे जीवन का
पहला दिन, पहली रात
उसी समय तुमने छीने
जीवन तरुवर के पात
हँसते हो, छूते हो जग के
सब सूखे कंकाल
शिशुपन की क्रीड़ा में
जीवन का यह रूप कराल !

वृद्ध सो रहा है,
तेरा ही स्वप्न रहा है देख
तीन पंक्तियों में मस्तक पर
है आशा का लेख

वह आशा जो जर्जरपन में
ले युवती का रूप
कंकालों से हँसती रहती
तेरे ही अनुरूप

तेरा जीवन है जग के
फूलों का जीवन-नाश
तेरी क्रीड़ा के कारण ही
शून्य हुआ आकाश
मेरा जीवन तो तुझ से भी
शीतल है ओ क्रूर !
क्यों रहता है फिर उससे तू
डर कर इतनी दूर

जीवन-सुख है वर्षा की
सरिता का वारि-विलास

उठ कर पत्थर से ठोकर
खाकर करता उपहास
उस सुख से तेरे दुख में
मिलती है अधिक मिठास
तुझ में ही मेरा बसन्त है
तुझ में अमर विलास
समय की शीतल साँस

सुनहले स्वप्न

निशा के उज्ज्वल प्रातःकाल
तुम्हारा किस प्राची ने कहाँ,
किया है रँग कर प्यार दुलार ?
शून्य में दृश्यों के रच जाल
लगा नश्वरता बन्दनवार

नींद-नभ के अस्थिर पर्जन्य
उड़े किस ओर, चले किस ओर
सजा कर इन्द्र-धनुष के रंग
स्मृति में भी बन कर चैतन्य
छिपा कर पलकों में निज अंग

रजनि के सज्जित रंजित हार
सरल हो और मृदुल आकार

टूटते बनते बारम्बार
कौन है स्वर्णकार सुकुमार
किया करता है निशि शृंगार

चारु चितवन के चञ्चल चित्र
किस तरह छोड़ सजीले गाल
आ गये तम से तुम पथ भूल
दीखते हो तुम कुसुम विचित्र
खिला करते हो जो निर्मूल

हृदय-उपमान अरे गतिमान !
वायु झोंका दे दो इस भाँति
स्वर्ण पङ्खों से उड़ सविराग
उसी झोंके में गूँजे गान
वही हो नश्वरता का राग

जीवन-पथ

ओ मेरे पथ, जीवन पथ !
मेरे पदाघात सह कर,
दिखलाते हो गृह गृह के द्वार
बसता है इस ओर और
उस ओर तुम्हारे सब संसार
ओ मेरे पथ, जीवन-पथ !

यह कुसुमय पर्वत प्रदेश-सा,
असम विषम है चारों ओर
पतले कृश बनते जाते हो,
जैसे आता है वन घोर
ओ मेरे पथ, जीवन-पथ !

यद्यपि वृद्ध सदृश झुकते-से
दिखते हो तुम निर्बल क्लांत

पर दिखलाते रहो मुझे
मेरी आशा का अन्तिम प्रांत
ओ मेरे पथ, जीवन-रथ !

तिरस्कार

क्या कहते हो, एक शक्ति से शासित है संसार !
उसको तुम कहते हो ईश्वर निराकार साकार
विश्व नाचता है जब भरता है स्वर वह स्वरकार
आदि अंत थक गये देखकर उसका बल विस्तार
प्रकृति अनुचरी सदा समर्पित करती मधु-ऋतु फूल
गूँथ रही सरिता तरंग माला अपने ही कूल

क्या कहते हो एक शक्ति से शासित है संसार !
कितनी है यह भूल, सोचना है यह घृणित विकार
एक शक्ति, औ: एक शक्ति, उसका क्या है अधिकार ?
अपने मन की इच्छा से ही निर्मित है संसार
मेरे दुख में बनता है जग कितना रौद्राकार !
मेरे सुख में करने आता अपना ओछा प्यार !

अपने कार्यों में पाता हूँ मैं अपना ही रूप
बनता हूँ मैं रंक स्वयं बनता हूँ मैं ही भूप
यहाँ कौन निर्णय करता है होता किसका न्याय
मेरा है सत्कार्य और मेरा है कठिन उपाय
मैं ही निज अस्तित्व-तत्व का निर्माता स्वाधीन
ओ संसार, बना है क्यों तू ईश्वर के आधीन ?
कैसे मानूँ एक शक्ति पर आश्रित है संसार
यहाँ प्रेम से मिलती निष्ठुरता की कलुषित धार
नेत्र-विहीनों के सम्मुख है मृग नयनी सुकुमार
अंधकार में पुष्प राशि की एक विभूति अपार
सागर में रत्नों का वैभव है जलचर के पास
कीटों के ही लिए बना है पुष्पों का अधिवास
उज्ज्वल तारों का मिटना कहलाता प्रातःकाल
बादल का जल उठने को कहते हैं विद्युत् माल
होता है जल पतित उसे कहते हैं सुखद फुहार

सरस सुमन का हृदय वेधना कहलाता है हार
इसी विषमता में है क्या ईश्वरता का विस्तार
ओ संसार, न कर ऐसा ईश्वरता से तू प्यार

× × ×

मैं ही अपना जीवन-पट रँगता हूँ विविध प्रकार
यहाँ कौन है निराकार, है कौन यहाँ साकार !

परिचय

मेरी गति है वहाँ जहाँ पर करुणा का है नाम नहीं
मैं रहता हूँ वहाँ जहाँ रहने का कोई धाम नहीं
मेरे कार्यों का होता है कोई भी परिणाम नहीं
मेरे व्रज में गोप नहीं, गोपियाँ नहीं, घनश्याम नहीं
    मैं जाता हूँ कहाँ, इसी का मुझको बिलकुल ज्ञान नहीं
    मुझे छोड़ कर अन्य किसी से मेरी है पहिचान नहीं

सूक्ष्म और अन्तर्यामिन् का मुझ में होता है अवतार
मूर्ति कहाँ है विभव व्यूह का सजा रहा हूँ मैं संसार
जाग रहा है चित्, सोता है अचित् प्रकृति बन बारम्बार
आता कौन, कौन जाता है सृष्टि-महासागर के पार
    बद्ध मुक्त से सजा रहा हूँ चित् का मैं अस्तित्व अनन्त
    सत रज तम की वृत्ति चली जाती है महा-प्रलय पर्यन्त

परिवर्तन की चाल ! एक कण घूम घूम कर सौ सौ बार
बना रहा है प्रलय, विश्व के बना रहा अगणित संसार
रात्रि और दिन के परदों पर खेल रहा जीवन बन व्यस्त
अन्धकार के काल-सर्प जब ढक लेते हैं विश्व समस्त
    और सर्प दंशित सम जग जब हो जाता है तमसाकार
    मैं जाता हूँ पुरुष-रूप से करने महा प्रकृति से प्यार

\+ + +

कैसा है वह प्यार ! वासना का उसमें विस्तार नहीं
क्रीड़ास्थल है महा विश्व, यह छोटा-सा संसार नहीं

विराट रूप

मेरी जीवन-तंत्री में कितनी आहों के तार लगे !
मेरे रोम रोम में कितने ही दुख के संसार लगे।
मेरा अंतर् वहिर् प्रकृति में प्रबल हार के हार लगे ।
मेरे जीवन नभ को दुख-दामिनि के चपल प्रहार लगे
ज्ञान-कोष में आँसू के कितने ही हैं भंडार लगे
मेरे मानस में छल करने वाले कितने प्यार लगे !

मेरे हँसने से ही शशि-किरणों का उज्ज्वल हास हुआ
मेरे आँसू की संख्या से तारों का उपहास हुआ
मेरे दुख के अन्धकार से रजनी का शृंगार हुआ
मेरे बिखरे भावों से बिखरा-सा यह संसार हुआ
मेरे सुख से ही जग में सुख का है कुछ आभास हुआ
मेरे जीवन से ही मानव-जीवन का इतिहास हुआ

जीर्ण गृह

लिए कितनी स्मृतियों का कोष
　　　　भिखारी-सा जर्जर तन भार
खड़े हो ओ मेरे गृह आज !
　　　　किसे करने को भूला प्यार ?

भुलाए कितने वर्ष अतीत
　　　　गोद में खड़े हुए दिन रात
बुलाए वातायन से नित्य
　　　　झांकने वाले बाल-प्रभात

रात की काली चादर ओढ़
　　　　निकलते थे तारे चुपचाप
देखते थे वे चारों ओर
　　　　भयानक अन्धकार का पाप

देखते थे तुम भी उस काल
हृदय में कर सुस्नेह प्रकाश
दीप्तिमय छिद्र नेत्र-से अचल
उन्हीं नक्षत्रों का आकाश

तुम्हारे लघु छिद्रों के नैन
जानता था कब मैं उस काल
प्रकाशित होंगे कभी न हाय!
उठेंगे जब ये तारे-बाल

एक छाया ही का आतंक
बढ़ेगा तुम पर ऐसा आह!
निकल जावेगा तुम पर चूक
रात्रि दिन का अविराम प्रवाह

आह, वे स्मृतियाँ कितना उग्र,
कहाँ है, कहाँ, कहाँ, किस ओर!

वहाँ कैसा था रजनी काल
और कैसा तम था, उफ़' घोर !

और मेरी माँ का संसार
हिल रहा था जब पल प्रति पल
नेत्र की उज्ज्वलता में सिमिट
गया था अन्धकार अविचल

आँख की पुतली पल में कभी
भूल जाती थी अपनी चाल
देखते थे उसको चुपचाप
प्यार के पाले भोले बाल

शुष्क ओठों का अविदित बोल
चुरा ले गई पापिनी वायु
ओस की बूँदों-सी उड़ चली
फूल से तन में बैठी आयु

आँख धीरे धीरे थी खुली
　　　　दृष्टि निर्बल पहुँची सब ओर
और पुतली ने धीरे छुआ
　　　　बुझी आँखों का सूखा छोर

उसी क्षण उज्ज्वल दीप-प्रकाश
　　　　हो गया पल पल अधिक मलीन
अन्त में संध्या-सा बन कहीं
　　　　हो गया अन्धकार में लीन

आज भी वह स्मृति ले चुपचाप
　　　　रखे हो अपना अवनत भार
यही तो है जीवन की हार
　　　　यही तो दो दिन का संसार

यही तो दो दिन का संसार
　　　　खिलाता है कितने ही फूल

और दो दिन के भूखे भ्रमर
झूलते हैं अपना भूल
तुम्हारा सुंदर उपवन और
तुम्हारा सुंदर रूप विशाल
आज है देख रहा संसार
तुम्हें रोगी का नत कंकाल

वायु आ कर छू जाता शीघ्र
देखते हो तुम उसका व्यंग
कभी सौरभ भारों से थका
सदा लिपटा रहता था अंग
बने हो अब अतीत से विन्दु
बने हो अवनी पर निरुपाय
बने स्थिर, सकरुण स्वप्नाकार
लिए अपना अविदित अभिप्राय

न गिरना, मत गिरना ए सुनो !
सुरक्षित रखना अपना हार
कभी आऊँगा फिर इस ओर
आँख में भर आँसू दो चार